भारत विभाजन का पुनर्मल्यांकनः औपनिवेशिक विरासत, सांप्रदायिक राजनीति और मानवीय त्रासदी का ऐतिहासिक विश्लेषण

प्राप्तिः 02.09.2026
स्वीकृतः 20.09.2026

79

डॉ0 प्रवीन कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
दयाल सिंह कॉलेज, करनाल,
हरियाणा

अमीर खान
शोधार्थी (इतिहास विभाग)
कुरुक्षत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र,
हरियाणा
ईमेलः*amirkhan702722@gmail.com*

सारांश

बीसवीं शताब्दी के विश्व–इतिहास में भारत का विभाजन (1947) केवल एक संवैधानिक या राजनीतिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि औपनिवेशिक शासन, प्रतिस्पर्धी राष्ट्रवाद, सांप्रदायिक राजनीति तथा साम्राज्यवादी रणनीतियों के दीर्घकालिक अंतर्संबंधों से निर्मित एक जटिल ऐतिहासिक प्रक्रिया थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ घटित यह विभाजन मानव इतिहास के सबसे व्यापक जन–विस्थापनों में से एक सिद्ध हुआ, जिसने लाखों लोगों के जीवन, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक संबंधों और सामूहिक स्मृतियों को स्थायी रूप से प्रभावित किया। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य भारत विभाजन की पारंपरिक व्याख्याओं का आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन करते हुए उन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना है, जिन्होंने विभाजन की पृष्ठभूमि निर्मित की थी। इस लेख में औपनिवेशिक प्रशासन की नीतियों, पृथक निर्वाचन व्यवस्था, सांप्रदायिक राजनीति के विकास, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के वैचारिक मतभेदों, संवैधानिक प्रयोगों तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उत्पन्न राजनीतिक परिस्थितियों का समग्र परीक्षण किया गया है। साथ ही राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी, कैम्ब्रिज, सबाल्टर्न और पुनरावलोकनवादी इतिहासलेखन की तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि भारत विभाजन को किसी एक नेता, संगठन अथवा समुदाय की असफलता के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह अनेक ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक कारकों की संयुक्त परिणति थी।

मुख्य शब्द

भारत विभाजन, औपनिवेशिक शासन, सांप्रदायिक राजनीति, राष्ट्रवाद, मुस्लिम लीग, कांग्रेस, विस्थापन, मानवीय त्रासदी, इतिहासलेखन।

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of Shodhmanthan.*

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.079

भूमिका

आधुनिक दक्षिण एशिया के इतिहास में यदि किसी एक घटना ने राजनीतिक सीमाओं, सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक स्मृतियों और राष्ट्रीय पहचान को सबसे अधिक प्रभावित किया है, तो वह 1947 का भारत विभाजन है। यह घटना केवल ब्रिटिश शासन की समाप्ति अथवा एक स्वतंत्र राष्ट्रों भारत और एक स्वतंत्र नव राष्ट्र पाकिस्तान के उदय तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसने उपमहाद्वीप की ऐतिहासिक चेतना को गहराई से परिवर्तित कर दिया। स्वतंत्रता का वह क्षण, जिसे औपनिवेशिक दासता से मुक्ति का उत्सव होना चाहिए था, व्यापक सांप्रदायिक हिंसा, जनसंहार, विस्थापन और मानवीय पीड़ा के कारण इतिहास की सबसे जटिल त्रासदियों में परिवर्तित हो गया। अनुमानतः एक करोड़ चालीस लाख से अधिक लोगों ने सीमाओं के आर–पार पलायन किया, जबकि लाखों लोग हिंसा, बीमारी, भूख और प्रशासनिक अव्यवस्था के कारण मारे गए।[1]

भारत विभाजन की ऐतिहासिक व्याख्या लंबे समय तक मुख्यतः राजनीतिक नेतृत्व के निर्णयों, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के संबंधों अथवा मोहम्मद अली जिन्ना और जवाहरलाल नेहरू के वैचारिक मतभेदों के संदर्भ में की जाती रही। इस दृष्टिकोण ने संवैधानिक घटनाक्रम और उच्चस्तरीय राजनीतिक वार्ताओं को तो पर्याप्त महत्व दिया, किन्तु औपनिवेशिक षासन की संरचनात्मक नीतियों, स्थानीय सत्ता–संघर्षों, सांप्रदायिक पहचान के क्रमिक निर्माण तथा सामान्य जनता के अनुभवों को अपेक्षित स्थान नहीं मिला। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतिहासलेखन की नई प्रवृत्तियों ने इस सीमित दृष्टिकोण को चुनौती दी और यह स्थापित किया कि विभाजन को केवल राजनीतिक समझौतों की विफलता के रूप में नहीं समझा जा सकता।[2]

औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय समाज में प्रशासनिक पुनर्गठन, आधुनिक जनगणना, पृथक निर्वाचन, सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा संवैधानिक सुधारों की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, उसने धार्मिक पहचान को धीरे–धीरे राजनीतिक पहचान में परिवर्तित कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से विकसित यह प्रवृत्ति बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक तक आते–आते भारतीय राजनीति का केंद्रीय तत्व बन गई। इस प्रकार विभाजन अचानक घटित घटना नहीं था, बल्कि लगभग नौ दशकों में विकसित होती राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं का परिणाम था।[3]

इतिहासकार आयशा जलाल ने भारत विभाजन को सत्ता–साझेदारी की विफलता के रूप में देखा है, जबकि विपिन चन्द्र औपनिवेशिक साम्राज्यवाद और सांप्रदायिक राजनीति के अंतर्संबंधों को इसकी प्रमुख पृष्ठभूमि मानते हैं। यास्मीन खान और इयान टैलबॉट विभाजन को केवल राजनीतिक घटना नहीं, बल्कि व्यापक मानवीय संकट और सामाजिक विघटन के रूप में विश्लेषित करते हैं। वहीं ज्ञानेन्द्र पाण्डेय और उर्वशी बुटालिया विभाजन के इतिहास को सामान्य लोगों की स्मृतियों, हिंसा, लैंगिक अनुभवों और मौखिक इतिहास के माध्यम से पुनर्परिभाषित करते हैं। इन विविध व्याख्याओं से स्पष्ट होता है कि भारत विभाजन का इतिहास बहुआयामी है और इसे किसी एक कारण अथवा दृष्टिकोण तक सीमित नहीं किया जा सकता।[4]

औपनिवेशिक विरासत, सांप्रदायिक राजनीति और भारत विभाजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत विभाजन का इतिहास केवल 1947 की राजनीतिक घटनाओं का परिणाम नहीं था,

बल्कि यह लगभग एक शताब्दी तक विकसित होती औपनिवेशिक नीतियों, प्रशासनिक पुनर्गठन, l aS/kkfud ç;kskav kS lkanf;d jktuhfr dh tfVy çfØ;k dk fu'd'kZ FkkA[5]

1857 के विद्रोह के पश्चात ब्रिटिश शासन की भारत संबंधी नीति में निर्णायक परिवर्तन दिखाई देता है। विद्रोह ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि भारतीय समाज के विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक समूह एक साथ संगठित हो जाएँ, तो ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिरता गंभीर संकट में पड़ सकती है। इसलिए 1858 के बाद ब्रिटिश प्रशासन ने ऐसी नीतियाँ अपनाईं, जिनका उद्देश्य प्रशासनिक नियंत्रण बनाए रखने के साथ–साथ भारतीय समाज के भीतर राजनीतिक संतुलन स्थापित करना था। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने कभी औपचारिक रूप से "फूट डालो और शासन करो" को अपनी आधिकारिक नीति घोषित नहीं किया, फिर भी अनेक इतिहासकारों का मत है कि उसकी प्रशासनिक और संवैधानिक नीतियों का व्यावहारिक प्रभाव इसी दिशा में था।[6]

1871 से नियमित जनगणनाओं द्वारा भारतीय समाज को धर्म, जाति, भाषा और समुदाय के आधार पर वर्गीकृत किया गया। पहली दृष्टि में यह प्रशासनिक आवश्यकता प्रतीत होती है, किन्तु बर्नार्ड एस. कोहन ने स्पष्ट किया है कि औपनिवेशिक ज्ञान–व्यवस्था ने भारतीय समाज को केवल दर्ज नहीं किया, बल्कि उसे पुनर्गठित भी किया। जनगणना के माध्यम से धार्मिक समुदाय स्वयं को संख्यात्मक शक्ति, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और अधिकारों की दृष्टि से देखने लगे, जिससे सामुदायिक पहचान अधिक कठोर होती गई।[7]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (1885) ने आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद को संगठित स्वरूप प्रदान किया। प्रारम्भिक वर्षों में कांग्रेस की माँगें प्रशासनिक सुधारों और भारतीयों की बढ़ती भागीदारी तक सीमित थीं, किन्तु धीरे–धीरे यह राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख मंच बन गई। दूसरी ओर, ब्रिटिश सरकार भारतीय राजनीति में विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक समूहों के पृथक प्रतिनिधित्व की अवधारणा को प्रोत्साहित करती रही। यही वह चरण था जब भारतीय राजनीति में राष्ट्रवाद और सामुदायिक प्रतिनिधित्व समानांतर रूप से विकसित होने लगे।[8]

तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कर्जन ने प्रशासनिक सुविधा का तर्क देते हुए बंगाल का विभाजन किया, परन्तु राष्ट्रवादी नेतृत्व ने इसे बंगाल में उभरती राष्ट्रीय चेतना को कमजोर करने का राजनीतिक प्रयास माना। बंगाल विभाजन के विरोध में प्रारम्भ हुआ स्वदेशी आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का पहला व्यापक जन–आंदोलन बना। इसके विपरीत, पूर्वी बंगाल के कुछ मुस्लिम अभिजात वर्ग ने नए प्रांत का समर्थन किया क्योंकि उन्हें उसमें राजनीतिक अवसर दिखाई दिए। इस प्रकार बंगाल विभाजन ने पहली बार राष्ट्रवाद और सांप्रदायिक राजनीति के बीच स्पष्ट वैचारिक दूरी उत्पन्न की।[9]

1906 में ढाका में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना भारतीय राजनीति के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। प्रारम्भिक वर्षों में लीग का उद्देष्य ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा बनाए रखते हुए मुसलमानों के राजनीतिक हितों की रक्षा करना था। उस समय तक लीग ने पृथक राष्ट्र की माँग नहीं की थी, बल्कि संवैधानिक सुधारों के अंतर्गत मुसलमानों के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व की माँग की थी। आयशा जलाल का मत है कि मुस्लिम लीग की प्रारम्भिक राजनीति को सीधे पाकिस्तान

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.079

की अवधारणा से जोड़ना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा, क्योंकि उसके लक्ष्य समय के साथ बदलते रहे।[10]

1909 का भारतीय परिषद अधिनियम (मार्ले–मिंटो सुधार) भारतीय संवैधानिक इतिहास की निर्णायक घटना थी। इस अधिनियम द्वारा मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई। पहली बार धार्मिक पहचान को संवैधानिक आधार पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व का माध्यम बनाया गया। विपिन चन्द्र का मत है कि इस व्यवस्था ने भारतीय राजनीति में नागरिकता की अवधारणा के स्थान पर सामुदायिक प्रतिनिधित्व को अधिक महत्व दिया, जिसके दीर्घकालिक परिणाम अत्यंत गंभीर सिद्ध हुए।[11]

1916 का लखनऊ समझौता भारतीय राजनीति का एक रोचक अध्याय प्रस्तुत करता है। कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने पहली बार संवैधानिक सुधारों के लिए संयुक्त रूप से ब्रिटिश सरकार के समक्ष माँगें प्रस्तुत कीं। अनेक इतिहासकारों ने इसे हिंदू–मुस्लिम एकता का सर्वोच्च क्षण माना है। किंतु यही समझौता पृथक निर्वाचन की व्यवस्था को कांग्रेस द्वारा स्वीकार किए जाने के कारण बाद के वर्षों में आलोचना का विशय भी बना। सुमित सरकार के अनुसार यह समझौता तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की व्यावहारिक आवश्यकता था, परन्तु दीर्घकाल में इसने सामुदायिक प्रतिनिधित्व को और अधिक वैधता प्रदान कर दी।[12]

1935 का भारत शासन अधिनियम, औपनिवेशिक शासन का सबसे व्यापक संवैधानिक दस्तावेज था। इसके अंतर्गत प्रांतीय स्वायत्तता का विस्तार किया गया तथा निर्वाचन व्यवस्था को व्यापक बनाया गया। 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद कांग्रेस ने अनेक प्रांतों में सरकारें बनाई, जबकि मुस्लिम लीग अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर सकी। इतिहासकारों का मत है कि इसी काल में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य राजनीतिक अविश्वास अधिक गहरा हुआ। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस सरकारों पर मुसलमानों की उपेक्षा का आरोप लगाया, जबकि कांग्रेस ने स्वयं को समस्त भारतीयों का प्रतिनिधि संगठन बताया।[13]

द्वितीय विश्वयुद्ध (1939–1945) ने भारत की राजनीति को नई दिशा प्रदान की। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं से बिना परामर्श किए भारत को युद्ध में सम्मिलित कर दिया। इससे कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के संबंध अत्यंत तनावपूर्ण हो गए। दूसरी ओर मुस्लिम लीग ने इस अवसर का उपयोग अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए किया। युद्ध के पश्चात ब्रिटेन आर्थिक, राजनीतिक और सामरिक दृष्टि से अत्यंत कमजोर हो चुका था तथा भारत पर लंबे समय तक शासन बनाए रखना उसके लिए कठिन होता जा रहा था।[14]

1940 का लाहौर प्रस्ताव भारत विभाजन की दिशा में महत्वपूर्ण राजनीतिक मोड़ माना जाता है। यद्यपि प्रस्ताव में "पाकिस्तान" शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं था, फिर भी मुस्लिम बहुल क्षेत्रों के लिए "स्वतंत्र राज्यों" की अवधारणा ने भारतीय राजनीति को नई दिषा दी। आयशा जलाल का तर्क है कि लाहौर प्रस्ताव की भाषा जानबूझकर अस्पष्ट रखी गई थी, ताकि भविष्य की राजनीतिक वार्ताओं में पर्याप्त लचीलापन बना रहे।[15] यह व्याख्या पारंपरिक दृष्टिकोण से भिन्न है और विभाजन के इतिहासलेखन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।[16]

कांग्रेस, मुस्लिम लीग और ब्रिटिश सत्ता का त्रिकोणीय संघर्ष

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, अखिल भारतीय मुस्लिम लीग तथा ब्रिटिश सरकार के बीच विकसित होने वाला त्रिकोणीय राजनीतिक संघर्ष अंततः भारत विभाजन की दिषा में निर्णायक सिद्ध हुआ। आधुनिक इतिहास लेखन इस संघर्ष को केवल वैचारिक मतभेदों का परिणाम नहीं मानता, बल्कि इसे अविश्वास, संवैधानिक असफलताओं, राजनीतिक रणनीतियों तथा बदलती अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों से निर्मित जटिल ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखता है।[17]

1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद कांग्रेस ने सात प्रांतों में अपनी सरकारें गठित कीं। यह कांग्रेस की राजनीतिक शक्ति का अभूतपूर्व विस्तार था, किन्तु मुस्लिम लीग को अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस चुनावी परिणाम ने भारतीय राजनीति की दिशा को गहराई से प्रभावित किया। कांग्रेस ने स्वयं को संपूर्ण भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधि संगठन घोषित किया, जबकि मुस्लिम लीग ने यह तर्क दिया कि भारतीय मुसलमानों का वास्तविक प्रतिनिधित्व केवल वही कर सकती है। यहीं से प्रतिनिधित्व का प्रश्न भारतीय राजनीति के केंद्र में आ गया।[18]

मुस्लिम लीग का आरोप था कि कांग्रेस मंत्रिमंडलों की नीतियों में बहुसंख्यकवादी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं तथा मुसलमानों की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चिंताओं को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जा रहा। इतिहासकारों में इस विषय पर मतभेद है। कुछ विद्वान मानते हैं कि लीग ने इन आरोपों को राजनीतिक रूप से बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत किया, जबकि अन्य इतिहासकारों का मत है कि कांग्रेस नेतृत्व अल्पसंख्यकों की मनोवैज्ञानिक आशंकाओं को दूर करने में पूर्णतः सफल नहीं हो सका।[19]

सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ ने भारतीय राजनीति को नया मोड़ दिया। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं से परामर्श किए बिना भारत को युद्धरत राष्ट्र घोषित कर दिया। इसके विरोध में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया। इसके विपरीत मुस्लिम लीग ने इस अवसर को अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत करने के लिए प्रयोग किया और 22 दिसम्बर 1939 को "मुक्ति दिवस" मनाया। इस घटना ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य राजनीतिक दूरी को और अधिक बढ़ा दिया।[20]

मार्च 1940 में लाहौर अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने वह प्रस्ताव पारित किया जिसे बाद में "लाहौर प्रस्ताव" अथवा "पाकिस्तान प्रस्ताव" कहा गया। यद्यपि प्रस्ताव में "पाकिस्तान" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था, फिर भी उत्तर–पश्चिमी और पूर्वी भारत के मुस्लिम–बहुल क्षेत्रों के लिए "स्वतंत्र राज्यों" की अवधारणा प्रस्तुत की गई। आयशा जलाल का तर्क है कि इस प्रस्ताव को तत्काल पूर्ण पृथक्करण की योजना मानना ऐतिहासिक सरलीकरण होगा। उनके अनुसार जिन्ना इस प्रस्ताव को राजनीतिक वार्ता में दबाव–निर्माण के रूप में भी प्रयोग कर रहे थे।[21] दूसरी ओर यास्मीन खान का मत है कि चाहे प्रारम्भिक उद्देष्य जो भी रहा हो, इस प्रस्ताव ने भारतीय राजनीति में पृथक राष्ट्र की अवधारणा को वैधता प्रदान कर दी।[22]

1942 में कांग्रेस ने "भारत छोड़ो आंदोलन" प्रारम्भ किया। किंतु इस समय मुस्लिम लीग ने इस आंदोलन का समर्थन नहीं किया और स्वयं को ब्रिटिश सरकार के लिए अपेक्षाकृत सहयोगी राजनीतिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। परिणामस्वरूप युद्धकालीन वर्षों में लीग का राजनीतिक

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.079

प्रभाव तेजी से बढ़ा। ब्रिटिश प्रशासन भी कांग्रेस और लीग के बीच संतुलन बनाए रखने की नीति अपनाता रहा, जिससे दोनों दलों के बीच अविश्वास और गहरा होता गया।[23]

1945–46 के चुनावों ने भारतीय राजनीति की वास्तविक स्थिति स्पष्ट कर दी। केंद्रीय विधानमंडल की मुस्लिम आरक्षित सीटों पर मुस्लिम लीग को लगभग सर्वसम्मत समर्थन प्राप्त हुआ, जबकि सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में कांग्रेस की स्थिति अत्यंत मजबूत रही। इस चुनाव ने वस्तुतः भारतीय राजनीति को दो समानांतर प्रतिनिधित्वों में विभाजित कर दिया कांग्रेस अधिकांश भारतीयों की प्रतिनिधि थी, जबकि मुस्लिम लीग अधिकांश मुस्लिम मतदाताओं की प्रतिनिधि बन चुकी थी।[24] इस राजनीतिक वास्तविकता ने सत्ता–हस्तांतरण की प्रक्रिया को अत्यंत जटिल बना दिया।

1946 में ब्रिटिश सरकार द्वारा भेजा गया कैबिनेट मिशन भारत की एकता बनाए रखने का अंतिम गंभीर प्रयास था। मिशन ने संघीय ढाँचे पर आधारित ऐसी योजना प्रस्तुत की जिसमें रक्षा, विदेश नीति और संचार को छोड़कर अधिकांश शक्तियाँ प्रांतों को देने का प्रस्ताव था। प्रारम्भ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने इसे स्वीकार करने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु योजना की भिन्न–भिन्न व्याख्याओं तथा भविष्य की संवैधानिक व्यवस्था को लेकर उत्पन्न मतभेदों के कारण यह प्रयास विफल हो गया।[25] अनेक इतिहासकारों का मत है कि यदि कैबिनेट मिशन योजना सफल हो जाती, तो सम्भवतः भारत का विभाजन टल सकता था। कैबिनेट मिशन की विफलता के बाद मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त 1946 को "प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस" आयोजित किया। कलकत्ता में आरम्भ हुई हिंसा शीघ्र ही बंगाल, बिहार, नोआखाली, पंजाब तथा अन्य क्षेत्रों में फैल गई। सांप्रदायिक दंगों ने हिंदू–मुस्लिम संबंधों में अविश्वास को चरम पर पहुँचा दिया। ज्ञानेन्द्र पाण्डेय के अनुसार इस हिंसा ने केवल राजनीतिक संबंधों को नहीं तोड़ा, बल्कि पड़ोस, परिवार और स्थानीय समुदायों की उस सामाजिक संरचना को भी विखंडित कर दिया जो सदियों से सह–अस्तित्व का आधार थी।[26]

फरवरी 1947 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने यह घोषणा की कि जून 1948 तक भारत को सत्ता हस्तांतरित कर दी जाएगी। इसके पश्चात लॉर्ड माउंटबेटन को अंतिम वायसराय नियुक्त किया गया। माउंटबेटन ने राजनीतिक परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि संयुक्त भारत की संभावना अत्यंत क्षीण हो चुकी है। परिणामस्वरूप 3 जून 1947 की योजना के अंतर्गत भारत के विभाजन का निर्णय स्वीकार कर लिया गया।[27]

इतिहासकारों के बीच इस निर्णय को लेकर भी मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि बढ़ती हिंसा और राजनीतिक गतिरोध को देखते हुए विभाजन तत्कालीन परिस्थितियों में व्यावहारिक समाधान था। दूसरी ओर अनेक इतिहासकार यह तर्क देते हैं कि सत्ता–हस्तांतरण की अत्यधिक जल्दबाजी, सीमा आयोग के लिए अपर्याप्त समय तथा प्रशासनिक तैयारी के अभाव ने मानवीय त्रासदी को और भी भयावह बना दिया।[28]

मानवीय त्रासदी : विस्थापन, सांप्रदायिक हिंसा, लैंगिक अनुभव और विभाजन की स्मृतियाँ

भारत विभाजन का अध्ययन यदि केवल राजनीतिक घटनाओं, संवैधानिक परिवर्तनों अथवा सत्ता–हस्तांतरण की प्रक्रिया तक सीमित रखा जाए, तो उसके सबसे महत्वपूर्ण पक्ष की उपेक्षा होगी। 1947 का विभाजन आधुनिक इतिहास की सबसे व्यापक मानवीय त्रासदियों में से एक था। इसने न

केवल दो नए राष्ट्रों का निर्माण किया, बल्कि करोड़ों लोगों के जीवन, उनकी सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक स्मृतियों और पारिवारिक संरचनाओं को स्थायी रूप से बदल दिया। इसलिए समकालीन इतिहासलेखन में विभाजन को केवल राजनीतिक इतिहास नहीं, बल्कि मानवीय इतिहास के रूप में भी देखा जाता है।[29]

इतिहासकारों के अनुसार भारत और पाकिस्तान के बीच सीमाओं के निर्धारण के बाद लगभग 1.4 से 1.8 करोड़ लोगों को अपने घर छोड़ने पड़े। यह विस्थापन किसी सुव्यवस्थित सरकारी योजना के अंतर्गत नहीं हुआ, बल्कि भय, अफवाहों, सांप्रदायिक हिंसा और प्रशासनिक अव्यवस्था के बीच घटित हुआ। हजारों गाँव रातों–रात खाली हो गए। सदियों से एक साथ रहने वाले समुदाय अचानक एक–दूसरे के शत्रु बन गए। पंजाब, बंगाल, सिंध, उत्तर–पश्चिम सीमांत प्रांत तथा दिल्ली इस त्रासदी के प्रमुख केंद्र बने।[30]

विस्थापन केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं थाय यह मनुष्य की पहचान, स्मृति और सामाजिक अस्तित्व का भी विस्थापन था। जिन लोगों ने अपना घर छोड़ा, वे केवल भूमि से नहीं, बल्कि अपने इतिहास, संस्कृति, स्थानीय परंपराओं और सामाजिक संबंधों से भी कट गए। यही कारण है कि विभाजन की स्मृतियाँ आज भी भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश के अनेक परिवारों की सामूहिक चेतना का हिस्सा बनी हुई हैं।[31]

महिलाओं के अनुभवः विभाजन का मौन इतिहास

भारत विभाजन के अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन तब आया जब इतिहासकारों ने महिलाओं के अनुभवों को इतिहास लेखन का विशय बनाया। लंबे समय तक आधिकारिक इतिहास में महिलाओं की पीड़ा लगभग अनुपस्थित रही। उर्वशी बुटालिया, ऋतु मेनन और कमला भसीन ने यह स्थापित किया कि विभाजन के दौरान महिलाओं के साथ जो कुछ हुआ, वह केवल व्यक्तिगत त्रासदी नहीं, बल्कि राजनीतिक हिंसा का संगठित रूप था।[32]

हजारों महिलाओं का अपहरण किया गया, उनके साथ यौन हिंसा हुई, उन्हें जबरन धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया गया तथा अनेक मामलों में परिवारों ने स्वयं अपनी बेटियों और बहनों की हत्या कर दी ताकि वे "दूसरे समुदाय" के हाथों अपमानित न हों। यह तथ्य विभाजन की क्रूरता को और अधिक गहरा बना देता है।

रितु मेनन और कमला भसीन के अनुसार विभाजन के समय महिला का शरीर केवल व्यक्ति का शरीर नहीं रह गया थाय वह समुदाय की प्रतिष्ठा, सम्मान और प्रतिशोध का प्रतीक बन गया था। परिणामस्वरूप महिलाओं पर होने वाली हिंसा केवल व्यक्तिगत अपराध नहीं, बल्कि सांप्रदायिक संघर्ष का राजनीतिक माध्यम बन गई।[33]

स्वतंत्रता के बाद भारत और पाकिस्तान दोनों सरकारों ने अपहृत महिलाओं की खोज और पुनर्वास के लिए अभियान चलाए। किंतु अनेक महिलाओं ने अपने नए परिवारों के साथ रहने का निर्णय लिया, जबकि कुछ को उनकी इच्छा के विरुद्ध वापस भेजा गया। इससे पुनर्वास स्वयं एक जटिल मानवीय और नैतिक प्रश्न बन गया।[34]

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.079

शरणार्थी, पुनर्वास और नए समाज का निर्माण

विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान दोनों को विशाल शरणार्थी संकट का सामना करना पड़ा। लाखों लोगों के लिए आवास, भोजन, रोजगार और सुरक्षा की व्यवस्था करना नवस्वतंत्र सरकारों के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी। भारत में विशेष रूप से दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में बड़ी संख्या में शरणार्थी बसाए गए। पाकिस्तान में लाहौर, कराची और अन्य शहरों में भारत से गए मुसलमानों का पुनर्वास किया गया। इन शरणार्थियों ने नए सामाजिक और आर्थिक जीवन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अनेक व्यापारिक समुदायों, शिक्षित वर्गों तथा उद्यमियों ने नए क्षेत्रों में आर्थिक विकास को गति दी। इस प्रकार विभाजन केवल विनाश का इतिहास नहीं था यह पुनर्निर्माण का इतिहास भी था।[35]

भारत विभाजन की मानवीय त्रासदी यह स्पष्ट करती है कि राजनीतिक निर्णयों का प्रभाव केवल राज्य की सीमाओं तक सीमित नहीं रहता। विभाजन ने करोड़ों लोगों के जीवन, उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक संबंधों और मानसिक संसार को स्थायी रूप से बदल दिया। यदि इतिहास केवल राजनीतिक नेतृत्व के निर्णयों का अध्ययन करे और सामान्य जनता के अनुभवों की उपेक्षा करे, तो वह अधूरा इतिहास होगा। इसी कारण आधुनिक इतिहासलेखन विभाजन को केवल "स्वतंत्रता की कीमत" नहीं मानता, बल्कि उसे औपनिवेशिक विरासत, सांप्रदायिक राजनीति, प्रशासनिक विफलता और मानवीय पीड़ा के संयुक्त परिणाम के रूप में देखता है। यह दृष्टिकोण विभाजन को अधिक व्यापक, संवेदनशील और इतिहास सम्मत रूप में समझने की दिशा प्रदान करता है।

निष्कर्ष

भारत विभाजन आधुनिक दक्षिण एशिया के इतिहास की एक ऐसी निर्णायक घटना है, जिसने न केवल भारतीय उपमहाद्वीप के राजनीतिक भूगोल को पुनर्परिभाषित किया, बल्कि सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक संबंधों, सामूहिक स्मृतियों तथा राष्ट्रीय पहचानों को भी गहराई से प्रभावित किया। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत विभाजन को केवल 1947 की राजनीतिक घटना अथवा सत्ता–हस्तांतरण की प्रशासनिक प्रक्रिया के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह औपनिवेशिक शासन की दीर्घकालिक नीतियों, सांप्रदायिक राजनीति के क्रमिक विकास, संवैधानिक प्रयोगों, नेतृत्वगत मतभेदों, अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों तथा प्रशासनिक निर्णयों की संयुक्त ऐतिहासिक परिणति थी। इसलिए विभाजन की व्याख्या किसी एक व्यक्ति, राजनीतिक दल अथवा समुदाय की विफलता तक सीमित करना इतिहास की जटिलता का सरलीकरण होगा।

इस शोध के इतिहासलेखन संबंधी विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि समय के साथ भारत विभाजन की व्याख्याओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। जहाँ प्रारम्भिक इतिहासकारों ने राजनीतिक नेतृत्व और संवैधानिक घटनाक्रम को प्रमुखता दी, वहीं समकालीन इतिहास अध्ययन यह भी प्रतिपादित करता है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की नीतियों ने धार्मिक पहचान को राजनीतिक प्रतिनिधित्व का आधार बनाकर भारतीय समाज में विभाजनकारी प्रवृत्तियों को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। पृथक निर्वाचन व्यवस्था, सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा संवैधानिक सुधारों ने राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को सामुदायिक आधार पर संगठित किया। दूसरी ओर कांग्रेस और मुस्लिम

लीग के मध्य बढ़ते अविश्वास, सत्ता–साझेदारी की असफलता तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न राजनीतिक परिस्थितियों ने विभाजन की प्रक्रिया को और अधिक तीव्र बना दिया। साथ ही, सत्ता–हस्तांतरण की शीघ्रता, रेडक्लिफ सीमा आयोग की सीमाएँ तथा प्रशासनिक तैयारियों का अभाव मानवीय त्रासदी की व्यापकता को कम करने में असफल रहे।

मानवीय दृष्टि से भारत विभाजन विश्व इतिहास के सबसे बड़े अनिवार्य जन–विस्थापनों में से एक था। लाखों लोगों का पलायन, सांप्रदायिक हिंसा, महिलाओं पर अत्याचार, पारिवारिक विघटन तथा सामाजिक अविश्वास ने स्वतंत्रता के उत्सव को गहन पीड़ा में परिवर्तित कर दिया। यह त्रासदी हमें यह स्मरण कराती है कि राजनीतिक निर्णयों का प्रभाव केवल राज्य की सीमाओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वे समाज, संस्कृति और मानवीय संबंधों को भी गहराई से प्रभावित करते हैं। इसलिए विभाजन का अध्ययन केवल राजनीतिक इतिहास नहीं, बल्कि मानवता, स्मृति और नैतिक उत्तरदायित्व के इतिहास का भी अध्ययन है।

संदर्भ

1. टैलबॉट, इयान, और गुरहरपाल सिंह. द पार्टिशन ऑफ इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009, पृ0सं0–**3–18** खान, यास्मीन. द ग्रेट पार्टिशन : द मेकिंग ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान. येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007, पृ0सं0–**37–52.**
2. पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र. रिमेम्बरिंग पार्टिशन : वायलेंस, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्री इन इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001. पृ0सं0–**19–35.**
3. कोहन, बर्नार्ड एस. कोलोनियलिज्म एंड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेज : द ब्रिटिश इन इंडिया. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996, पृ0सं0–**7–18** मेटकाफ, बारबरा डी., और थॉमस आर. मेटकाफ. अ कन्साइस हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया. तृतीय संस्करण. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012, पृ0सं0–**165–183.**
4. बुटालिया, उर्वशी. द अदर साइड ऑफ साइलेंस : वॉइसेज फ्रॉम द पार्टिशन ऑफ इंडिया. पेंगुइन बुक्स, 1998 पृ0सं0–**41–58** जलाल, आयशा. द सोल स्पोक्समैन : जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ0सं0–**52–71.**
5. चंद्रा, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के. एन. पनिक्कर, और सुचेता महाजन. इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, 1857–1947. पेंगुइन बुक्स, 1989, पृ0सं0–**210–236.**
6. मेटकाफ, बारबरा डी., और थॉमस आर. मेटकाफ. अ कन्साइस हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया. तृतीय संस्करण. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012. पृ0सं0–**92–101** कोहन, बर्नार्ड एस. कोलोनियलिज्म एंड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेज : द ब्रिटिश इन इंडिया. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996, पृ0सं0–**11–24.**
7. कोहन, बर्नार्ड एस. कोलोनियलिज्म एंड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेजः द ब्रिटिश इन इंडिया. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996, पृ0सं0–**3–30.**

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i03.079

8. सरकार, सुमित. मॉडर्न इंडियाः 1885–1947. मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, 1983, पृ0सं0–**115–132.**
9. सरकार, सुमित. मॉडर्न इंडियाः 1885–1947. मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, 1983, पृ0सं0–**133–156** चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के. एन. पनिक्कर, और सुचेता महाजन. इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, 1857–1947. पेंगुइन बुक्स, 1989, पृ0सं0–**125–141.**
10. जलाल, आयशा. द सोल स्पोक्समैनः जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ0सं0–**15–39.**
11. चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के. एन. पनिक्कर, और सुचेता महाजन. इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, 1857–1947. पेंगुइन बुक्स, 1989, पृ0सं0–**215–224.**
12. सरकार, सुमित. मॉडर्न इंडियाः 1885–1947. मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, 1983, पृ0सं0–**189–201.**
13. जलाल, आयशा. द सोल स्पोक्समैनः जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ0सं0–**70–103** चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के. एन. पनिक्कर, और सुचेता महाजन. इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, 1857–1947. पेंगुइन बुक्स, 1989, पृ0सं0–**315–329.**
14. मेटकाफ, बारबरा डी., और थॉमस आर. मेटकाफ. अ कन्साइस हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया. तृतीय संस्करण. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012, पृ0सं0–**198–214.**
15. जलाल, आयशा. द सोल स्पोक्समैनः जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ0सं0–**120–142.**
16. टैलबॉट, इयान, और गुरहरपाल सिंह. द पार्टिशन ऑफ इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009, पृ0सं0–**73–96** खान, यास्मीन. द ग्रेट पार्टिशनः द मेकिंग ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान. येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007, पृ0सं0–**64–88.**
17. जलाल, आयशा. द सोल स्पोक्समैनः जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ0सं0–**115–148** खान, यास्मीन. द ग्रेट पार्टिशनः द मेकिंग ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान. येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007, पृ0सं0–**91–118.**
18. चंद्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी और अन्य सभी. इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडीपेंडेंस, 1857–1947. पेंगुइन बुक्स, पृ0सं0–**315–332.**
19. जलाल, आयशा. द सोल स्पोक्समैनः जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ0सं0–**78–102.**
20. सरकार, सुमित. मॉडर्न इंडियाः 1885–1947. मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, 1983, पृ0सं0–**352–367.**
21. जलाल, आयशा. द सोल स्पोक्समैनः जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ0सं0–**120–145.**

22. खान, यास्मीन. द ग्रेट पार्टिशनः द मेकिंग ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान. येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007, पृ0सं0–**101–113.**
23. चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के. एन. पनिक्कर, और सुचेता महाजन. इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, 1857–1947. पेंगुइन बुक्स, 1989, पृ0सं0–**421–447.**
24. टैलबॉट, इयान, और गुरहरपाल सिंह. द पार्टिशन ऑफ इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009, पृ0सं0–**88–102.**
25. मेटकाफ, बारबरा डी., और थॉमस आर. मेटकाफ. अ कन्साइस हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया. तृतीय संस्करण. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012, पृ0सं0–**215–223.**
26. पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र. रिमेम्बरिंग पार्टिशनः वायलेंस, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्री इन इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001, पृ0सं0–**94–118.**
27. मेटकाफ, बारबरा डी., और थॉमस आर. मेटकाफ. अ कन्साइस हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया. तृतीय संस्करण. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012, पृ0सं0–**224–229.**
28. टैलबॉट, इयान, और गुरहरपाल सिंह. द पार्टिशन ऑफ इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009, पृ0सं0–**145–181** खान, यास्मीन. द ग्रेट पाटिशनः द मेकिंग ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान. येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007, पृ0सं0–**118–141.**
29. टैलबॉट, इयान, और गुरहरपाल सिंह. द पार्टिशन ऑफ इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009, पृ0सं0–**145–162.**
30. खान, यास्मीन. द ग्रेट पार्टिशनः द मेकिंग ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान. येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007, पृ0सं0–**182–205.**
31. पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र. रिमेम्बरिंग पार्टिशनः वायलेंस, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्री इन इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001, पृ0सं0–**97–126.**
32. बुटालिया, उर्वशी. द अदर साइड ऑफ साइलेंसः वॉइसेज फ्रॉम द पार्टिशन ऑफ इंडिया. पेंगुइन बुक्स, 1998, पृ0सं0–**115–156** भसीन, कमला, और ऋतु मेनन. बॉर्डर्स एंड बाउंड्रीजः विमेन इन इंडियाज पार्टिशन. काली फॉर विमेन, 1998, पृ0सं0–**39–71.**
33. भसीन, कमला, और ऋतु मेनन. बॉर्डर्स एंड बाउंड्रीजः विमेन इन इंडियाज पार्टिशन. काली फॉर विमेन, 1998, पृ0सं0–**54–82.**
34. बुटालिया, उर्वशी. द अदर साइड ऑफ साइलेंसः वॉइसेज फ्रॉम द पार्टिशन ऑफ इंडिया. पेंगुइन बुक्स, 1998, पृ0सं0–**198–224.**
35. टैलबॉट, इयान, और गुरहरपाल सिंह. द पार्टिशन ऑफ इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009, पृ0सं0–**172–198.**